जंगल हमरा मायका, जंगल ही ससुराल

■ बाबा मायाराम

दुपहरी का समय था। भोजन करके लोग आराम कर रहे थे। हम गांव के अंतिम छोर पर स्थित घर में जाकर रुके। इस घर में महिलाओं के अलावा कोई पुरुष सदस्य नहीं था। बच्चे उघारे बदन खेल रहे थे। महिलाएं थक-हारकर खटिया पर आराम कर रही थी। वे सुबह महुआ बीनने गई थीं। यह दृश्य होशंगाबाद जिले में सोहागपुर विकासखंड के वनग्राम ढाबा का है। आदिवासी और जंगल एक दूसरे के पूरक हैं। उनमें परस्पर सहअस्तित्व है। 50 की उम्र पार कर चुकी सनिया बाई जंगल से निस्तार के बारे में कहती हैं कि जंगल ही हमारा जीवन है। हम जंगल से हैं और जंगल भी हमसे है। जंगल के बिना आदिवासी का जीवन वैसा ही है जैसा पानी के बिना मछली।

वे आगे कहती है कि जंगल के सहारे हमारी कई पीढ़ियां बीत गईं। छुटपन से लेकर अब तक उनकी पूरी जिंदगी ही जंगल में ही बीती है। छोटे से ही जंगल में अपने मां-बाप के साथ जाने लगी थी। मायके के गांव खडपाबड में स्कूल तो था नहीं इसलिए षुरू से ही घर के काम में हाथ बंटाने लगी। मुझे उनकी बात सुनकर पिपरिया के युवा कवियों का एक दोहा याद आ गया - जंगल हमरा मायका, जंगल ही ससुराल, जंगल भीगी आंख है, जंगल आंखें लाल। आमतौर पर जब हम जंगल में रहने वाले आदिवासियों के विकास के बारे में बात करते हैं तो वह मौद्रिक चीजों के बारे में ही केंद्रित होती है। लेकिन जंगल से कई तरह की अमौद्रिक चीजें मिलती हैं, उन पर ध्यान नहीं जाता, जो रोजमर्रा की बड़ी जरूरतें पूरी करती हैं। ये सब उन्हें प्रचुर मात्रा में नि:शुल्क उपलब्ध होती हैं। और अब इसे वन अधिकार कानून ने भी मान्यता दे दी है।

सनिया कहती हैं कि जंगल से पहले बहुत सी चीजें मिलती थीं। तवा बांध में बहुत सा जंगल डूब गया। इस कारण अब बहुत कम वनोपज मिलती है। पहले जंगल कोयला बनाने के लिए काटा गया। यहां से ट्रकों कोयला बाहर जाता था। हिन्दी के कथाकार भारतेन्दु 1872 में इस क्षेत्र के बारे में लिखा है। उन्होंने जबलपुर से इटारसी के बीच रेलयात्रा की थी। उन्होंने लिखा है कि रेलपथ के दोनों ओर जंगल और पहाड़ों के कुछ दृश्टि नहीं पड़ता। कोसो पर्यंत कोई गांव नहीं दिखाई पड़ता। यानी यहां बहुत घना जंगल था। वह बताती है कि पहले हमें महुआ, गुल्ली, षहद, तेंदू, तेंदूपत्ता, अचार, मेनर, आंवला, रामबुहारी, पत्तल-दोने, भाभर घास, भमोड़ी (मशरूम) सब कुछ मिलता था। बांस और घर की मरम्मत करने के लिए लकड़ी मिलती थी। लेकिन अब इसमें कमी आई है।

इसके अलावा बच्चों के लिए पोषण की चीजें नि:शुल्क मिलती है। उन्होंने इसकी लंबी फेहरिस्त बनवाई-बेर, जामुन, अमरूद, मकोई, सीताफल, आम और कई तरह के फल-फूल सहज ही उपलब्ध हो जाते थे। और बहुत से अब भी मिलते हैं। आदिवासी जंगल, पेड़, पत्थर को देवता मानता है। उनका जीवन प्रकृति से बहुत करीब है। आदिवासी का जंगल के साथ मां-बेटे का रिश्ता है। वे जंगल से उतना ही लेते हैं जितनी उनको जरूरत है। सबसे कम प्राकृतिक संसाधनों में गुजर-बसर करने वाला है आदिवासी समुदाय। लेकिन होशंगाबाद जिले में आदिवासी कई परियोजनाओं से विस्थापित हुए हैं। उन्हें अपने घरों से बेदखल होना पड़ा है। यहां 1970 में बने तवा बांध से 44 गांव और भारतीय फौज द्वारा गोला-बारूद के परीक्षण के लिए बनई गई फ्रूफरेंज के लिए 26 गांव विस्थापित किए गए। इसके बाद आर्डिनेंस फैक्टी में 9 गांवों के लोगों की जमीनें गईं। फिर 1981 में सतपुड़ा नेशनल पार्क में 2 गांवों की जमीनें गईं। कुल मिलाकर, 80 गांव विस्थापित हुए। जिन्हें नाममात्र का मुआवजा मिला। इससे जंगल भी नष्ट हुआ और लोगों का निस्तार भी प्रभावित हुआ।

अब वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए सतपुड़ा टाइगर रिजर्व बनाया गया है। इसमें पहले से संरक्षित तीन क्षेत्र शामिल किए गए है- सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान, बोरी अभयारण्य और पचमढ़ी अभयारण्य। सतपुड़ा टाइगर रिजर्व का क्षेत्रफल करीब 1500 है। इस क्षेत्र में जंगल से निस्तार के लिए कई तरह की पाबंदियां लगाई जा रही हैं। इसलिए भी वन अधिकार कानून के तहत अधिकार महत्वपूर्ण है। अब पहली बार वन अधिकार कानून के तहत् आदिवासियों के अधिकारों को मान्यता मिल रही है। इससे आदिवासियों को उम्मीदें हैं। लेकिन इस कानून को ढंग से क्रियान्वयन नहीं किया जा रहा है। आदिवासियों को वन अधिकार कानून के तहत जमीन के अधिकार के साथ सामुदायिक अधिकार भी दिया जाना है। इस कानून के अनुसार जंगल से निस्तार, लघु वनोपज का अधिकार और जंगल में अपने मवेशी चराने का अधिकार मिलेगा। इसके अलावा, पानी, सिंचाई, मछली एवं पानी की अन्य उपज का अधिकार भी मिलेगा।

सनिया बाई या उसकी जैसी अन्य महिलाओं को वन अधिकार कानून के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी। लेकिन जमीन का अधिकार मिलने से वह खुश थी। उसने हमें अधिकार पत्र भी दिखाया। पर सामुदायिक अधिकार का दावा गांव की तरफसे हुआ है या नहीं वह नहीं बता सकी। ग्राम वन अधिकार समिति, मगरिया के अध्यक्ष व सरपंच अशोक कुमार कुमरे का कहना है कि सामुदायिक दावा की उन्हें जानकारी नही थी। उन्हें वन अधिकार कानून की प्रक्रिया की कोई जानकारी सरकारी स्तर पर नहीं दी गई और न ही कोई प्रशिक्षण दिया गया। उन्होंने कहा कि दावा फार्म इतना कठिन और जटिल था कि हमारे पल्ले ही नहीं पड़ा।

आदिवासी विकास, होशंगाबाद के सहायक आयुक्त के द्वारा जारी की गई जानकारी के अनुसार सामुदायिक दावों की संख्या मात्र 23 है। एक जिले के हिसाब से यह संख्या बहुत ही कम है। इसका साफमतलब है कि सामुदायिक दावे जानकारी के अभाव में नहीं भरे गए हैं, जिन्हें भरवाए जाने चाहिए। क्योंकि जमीन के अधिकार के सामुदायिक अधिकार भी जरूरी है, जो कानून के अनुसार भी दिए जाने चाहिए।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं और यह रिपोर्ट सी. एस. ई. मीडिया फैलोशिप के तहत है)

5 May 2011, Editorial Page, Daily Chhattisgarh, Raipur, C.G